माँ दुर्गा

- पूर्णिमा शाह

दुर्गा जिसे हम आदी पराशक्ति कहते हैं, वह हिन्दू धर्म में सर्वश्रेष्ठ देवी मानी जाती है। वह एक सैनिक की तरह हमारी रक्षा करती है, उन लोगों और शक्तियों से जो लोग शांति भंग करना चाहते हैं।

वह देवी एक शेर या सिंह पर सवार करती है और उनके असंख्य हाथों में अस्त्र और शस्त्र धारण करती है। माँ दुर्गा के तीन रूप हैं: महा दुर्गा, चण्डिका और अपराजिता। इनमें से चण्डिका देवी के दो रूप हैं: एक है चण्डी जो लक्ष्मी सरस्वती और पार्वती देवी की शक्तियों का मिलन है और दूसरा चामुण्डा जो माँ काली है। उनकी पूजा करने से ना केवल मन को शांति मिलती है, ब्लकि शारिरिक और मानसिक ताकत भी मिलती है। एक माँ जो अपने बच्चों के रक्षा करने के लिए किसी भी हद तक जा सकती है उसी प्रकार देवी दुर्गा कोई भी स्वरूप लेकर हमारी रक्षा में सदैव आ जाती है।

माँ के नौ स्वरूप हैं: हर एक स्वरूप में उनकी अलग अलग शक्ति है। नवरात्रि का अवसर शैलपुत्री से आरम्भित होता है जिसका मतलब है पर्वत की पुत्री। इन्हें सत्ती भवानी पार्वती या हेमवन्ती जो पर्वत हेमावन्त की पुत्री है। माता शैलपुत्री को सबसे पवित्र अवतार माना जाता है और वो प्रकृति की माता है। वह एक सांड पे सवार है और उनके हाथ में त्रशूल और दूसरे में कमल है। नवरात्र के दूसरे दिन पे माता ब्रह्मचारिणी की पूजा होती है। जिनका अर्थ है दृढ़ तपस्या उनके एक हाथ में माला और पानी का बर्तन दूसरे हाथ में है। वे अपने भक्तों को शान्ति, सुख, वैभाव और समृद्धि प्रदान करती हैं। तीसरे दिन पे माता चंद्रघंटा की पूजा होती है। उनके चेहरे पर अद्भुत तेज है और वह सिंह की सवारी करती है। उनके दस हाथ और तीन नेत्र है। वह हमेशा बुराई का संहार करने को तैयार है।। कूष्मांडा माता को चौथे दिन में पूजा करते है। उनका नाम का मतलब है जननी। उनके हाथों मे हथियार, माला और दूसरे पवित्र चीजें है। वह भी सिंह के उपर सवारी करते हैं। स्ककंद माता स्कन्द की माता है। स्कन्द मतलब कार्तिकेय। उन्हें देवों ने अपना प्रमुख सैनिक बनाया है। वह एक कमल पर विराजमान है और उनके चार हाथ है और तीन नेत्र है। वह स्कन्द को दाएं हाथ में पकड़ते हैं और बाएं हाथ से आशीर्वाद देते है। कात्यायनी माता को छठे दिन पे पूजते हैं, उनका चेहरा भयानक है उनके लंबे बाल और उनके चार हाथ है और हर एक हाथ में हथ्यार है। उनका अटूट तेज बुराई को नाश करता है, और उनका ध्यान करने से शान्ती मिलती है। सातवें दिन पे माता काल रात्रि की पूजा होती है। वह श्याम वर्णी है और उनके बाल खुले हैं। उनके तीन नेत्र हैं और उनमें एक अद्भुत चमक है। अपनी नासिका से अग्नि निकालती है और उनका वाहन है एक शव उनके दाएं हाथ में तलवार है और उनके बाएँ हाथ में एक जलती मशाल है। क्यूंकि वह एकदम शुद्ध है उन्हें शुभंकरी कहा जाता है। आठवें दिन में महागौरी की पूजा होती है। वह श्वेत वर्णीय है, उनकी उम्र आठ साल है। उनके तीन नेत्र हैं और वह एक सांड पे सवार करती है। उनका बायां हाथ अभय मुद्रा में है और दायें हाथ में डमरू। उन्हें महा गौरी इसलिए कहा जता है। क्योंकि उनका शरीर जब गंदा हो गया था तब शिव नें उन्हें गंगा के पानी से साफ किया था। नौंवे दिन पे सिद्धीदात्री की पूजा होती है। आठ सिद्धियां होती है वह है अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व। यह माता सब सिद्धियां प्रदान करती है। उनकी कृपया से शिव का आधा शरीर देवी बन गया है। इसलिए उन्हें अर्धनारेश्वरी कहते है। वह एक सिंह पे सवारी करती हैं उनके चार हाथ है और उनका मुख बहुत आनंदित है। यह रूप की पूजा हर एक देवी देवता करते हैं ऋषि मुनि सिद्ध, योगी, साधक,और भक्त सब उनकी पूजा करते है। तो आइये इस दुर्गा पूजा से और माँ के आशिर्वाद से हम, अपने और पूरे दुनिया के कल्याण की प्रार्थना करें। ■

- जय माता दी -

कहानी - घर नहीं खोता

- नीलम मलकानिया

ईद की वजह से मेट्रो स्टेशन पर बहुत भीड़ थी। उत्सव के माहौल के बीच अवंतिका पर गहरी उदासी छाई थी। बेचैनी की वजह से इतनी भीड़ में भी वो ख़ुद को एकदम अकेली महसूस कर रही थी। बहुत उम्मीद लेकर वो सुजान अंकल से मिलने आई थी पर उन्होंने तो साफ़ मना कर दिया कि पिताजी को इसके लिए तैयार नहीं किया जा सकता। यानी उसका सपना अधूरा ही रह जाएगा।

"ख़बरदार..जो ऐसा सोचा तो"

"विदेश जाकर पढ़ने से आपकी इज्जत खराब ना होगी माँ"

"जबान ना चला री छोरी...चुपचाप घर आ जा..दिल्ली देख ली बहुत..बस अब नहीं चाहिए तेरी पढ़ाई"

" मेरा ख़र्चा भी नहीं देना पड़ेगा..मैं वहाँ काम करूँगी।"

"घर-गिरस्थी का काम करना है अब तो"

" माँ.. सरकारी योजना से मेरी सारी पढ़ाई आसानी से हो जाएगी।"

अचानक पिताजी की कड़क....रूखी और रौबदार आवाज़ सुनाई दी...

"दो दिन में घर आ जा...नहीं तो हमें तेरा कुछ सोचना पड़ेगा" धमकी के साथ फोन बंद। यही थी उसकी कल रात की बातचीत अपने घर वालों से।

मैट्रो में बैठते ही अवंतिका गहरी निराशा में डूब गई। मन फिर घर पहुँच गया था। वो जानती थी कि पिताजी उसे भेजने के लिए कभी तैयार नहीं होंगे। तीन साल पहले भी ऐसा समय आया था...

जब बारहवीं के बाद हरियाणा के एक छोटे से गांव से दिल्ली आकर पढ़ने की ज़िद की थी तो घर में सब लोगों ने बवाल मचा दिया था। सारी बहनें लंबी-चौड़ी और सुंदर थीं। इसलिए माँ को लगता था कि इनकी शादी तो आसानी से हो जाएगी लेकिन इस काली-कलूटी को कौन ब्याहेगा। परिवार में पाँचवी बेटी और ऊपर से छोटे क़द की गहरी रंगत की लड़की। कोई भी लड़का मिलते ही वे उसके बोझ से मुक्त होना चाहते थे। फिर बेटी की पढ़ाई में इतना ख़र्च करना उन्हें नासमझी ही लगती थी। वो तो भला हो उसकी चार बड़ी बहनों और कुछ मंगल दोष वाली कुंडली का कि उनकी शादी में देर होती गई और अवंतिका अपनी पढ़ाई के लिए जैसे-तैसे पैसे जुटाकर दिल्ली आ गई। सुजान अंकल ने पिता जी को मनाने में बहुत साथ दिया था। गाँव के ज़मीन के क़ानूनी मामलों के सिलसिले में वे अक्सर उनके घर रुकते थे। पेशे से वकील सुजान अंकल अवंतिका के पिताजी के दोस्त हैं और यहां दिल्ली में उसके लोकल गार्जियन भी। उन्होंने कई मौक़ों पर अवंतिका का पक्ष उसके पिता के सामने रखा और उस की बात मनवाई थी। इस वजह से कई बार उनके बीच बहस भी हुई। शायद इसीलिए आज सुजान अंकल ने भी मना कर दिया।

बहुत मेहनत की थी अवंतिका ने पढ़ाई के लिए। अपनी क्लासमेट्स के कहने पर समय और पैसा दोनों बचाते हुए उसने अपनी बी.ए.की पढ़ाई के साथ-साथ एक साल का अंग्रेज़ी भाषा का और एक साल का जापानी का कोर्स तो कर लिया था लेकिन अब सवाल ये था कि आगे क्या किया जाए। उसकी एक क्लासमेट दो साल के लिए जापान जा चुकी थी और उसे भी वहां बुला रही थी।

अवंतिका के प्रोफ़ेसर तोमर भी चार साल जापान में कार्यरत रहे थे। इसीलिए अवंतिका ने जब उन्हें यह बात बताई तो वे बहुत ख़ुश हुए थे। अब अवंतिका के मन में परसों की बातचीत घूमने लगी। मैट्रो के शोर में भी उसे सर के कहे शब्द साफ़ सुनाई देने लगे।

"अरे वाह! ऐसा मौक़ा बिल्कुल नहीं छोड़ना चाहिए बेटा। इन दो सालों में तुम ऐसा बहुत कुछ सीखोगी जो जीवन भर तुम्हारे काम आएगा।"

"जापान बहुत ही सुंदर देश है ना सर।... एक मज़बूत अर्थव्यवस्था और साथ ही सभ्यता का जीता जागता स्वरूप।"

"हाँ ... मैं अपना जापान प्रवास कभी नहीं भूल सकता। कभी वहाँ का शिष्टाचार तो कभी अनुशासन और कभी कोन्नीचिवा ...सायोनारा करते मददगार लोग याद आ जाते हैं।"

" वहाँ तो बहुत अलग तरीक़े से पढ़ाई होती होगी ना। मेरी फ़्रैंड ने तो मेरे लिए युनिवर्सिटी में सीट भी रिज़र्व करवा दी है सर... पर मेरी फैमिली...."

"अपनी फैमिली को समझाओ अवंतिका। अपनी पढ़ाई बेकार मत होने दो। जब तुम एनवायरमेंट कंज़र्वेशन में डिग्री लेकर वापस आओगी तो यहाँ नौकरी के बहुत अच्छे अवसर मिलेंगे।"

नौकरी के अच्छे अवसर की बात सुनते ही अवंतिका की आंखों में एक चमक आ गई थी। उसने जापान जाने की प्रवेश परीक्षा भी तो पास कर ली थी। अब इंटरनेट और तस्वीरों में देखे जापान को वो ख़ुद महसूस करना चाहती थी। तोमर सर उसे समझाते जा रहे थे...

" तुम्हें आगे चलकर पर्यावरण विज्ञान के क्षेत्र में जाना है ना।... तुम्हें तो वहाँ जाकर और भी फ़ायदा होगा क्योंकि वहां प्रकृति को तुम उस रूप में समझ सकोगी जो आज हम अपने यहाँ खोते जा रहे हैं।... वैसे तो प्रकृति हमारे सनातन धर्म का अभिन्न हिस्सा है। हम आज भी प्राकृतिक उपादानों में ही आस्था ढूंढते हैं... अपने देवी-देवताओं का वास मानते हैं.. लेकिन फिर भी आधुनिकता की दौड़ में हम अपना नुक़्सान कर रहे हैं।... तभी तो कभी बाढ,.. कभी सूखा ..कभी कोई और आपदा।... एक समय था जब हमने दुनिया को बहुत कुछ दिया था पर आज अपना दिया ही भूल रहे हैं। तुम्हारे जैसे होनहार बच्चे जब कुछ नया सीख कर आएंगे तो हमारे पूरे समाज को लाभ मिलेगा।...."

सर के शब्द उसके कानों में गूँजते रहे। मैट्रो अपनी रफ़्तार से आगे बढ़ती रही। पर अवंतिका का गुज़रा समय जैसे एक शून्य बनकर उसके सामने तैरने लगा।

अपनी कुंठाओं और अवहेलना का सामना करते-करते अवंतिका पूरी तरह से बस अपनी किताबों में ही खोई रहती थी। दिल्ली में पढ़ाई के समय दोस्तों ने उसका हौसला बढ़ाया था और अब भी लगातार उसे प्रोत्साहित करते रहते हैं।

किसान की बेटी मिट्टी से कुछ अधिक जुड़ी होती है। दिल्ली आकर उसने पर्यावरण को ही अपना विषय चुना और अब क़िस्मत से जापान जाकर पढ़ाई करने का सुनहरा अवसर मिल रहा है। पर उसके लिए पास के ही गाँव का एक लड़का पसंद कर चुके पिताजी को ये सब समझाना मुश्किल है।

लम्बी गहरी साँस लेकर अवंतिका ने अपने सीने की घुटन को थोड़ा कम किया। मैट्रो अब थोड़ी ख़ाली लग रही थी। अचानक उसका ध्यान सामने खड़ी दस-ग्यारह साल की दो बच्चियों पर गया।

दोनों बच्चियाँ आंखों में जिज्ञासा भरे पूरे मेट्रो स्टेशन को देख रही थीं, लोगों की भीड़, उनके बीच कुछ परिचित चेहरे तलाशने की कोशिश करते हुए मेट्रो की पूरी व्यवस्था को निहार रही थीं। कुछ समझ आता तो एक बच्ची दूसरी को बताती और कभी दूसरी कुछ देखती तो पहली के कान में कुछ फुसफुसाती। दोनों बच्चियां दरवाज़े के काँच पर अपनी नाक चिपकाए हुए बाहर झांक रही थीं। फिर दोनों किसी बहस में व्यस्त हो गईं थीं। धीरे-धीरे आपस में बात कर रही थीं। अवंतिका सुनने लगी...

"तुझे डर तो नहीं लग रहा"
"ना..जैसे आए थे...वैसे ही चले जाएंगे।"
"किसी से पूछ ले ना"
"तू पूछ ले"
"न तू पूछ..."
अवंतिका को लगा कि कुछ गड़बड़ है। उसने तुरंत पूछा।
"कहाँ जाना है बच्चों"
"सिलमपुर"
"अरे... ये तो पिंक लाइन है। ये सिलमपुर नहीं जाती। तुम्हें वैलकम मैट्रो स्टेशन से मैट्रो बदलनी होगी और तुम लोग तो काफ़ी दूर आ गए हो। तुम्हारे साथ कोई और नहीं है क्या"
"नहीं.."दोनों ने एक साथ कहा।

अवंतिका को लगा बच्चियाँ कहीं डर से रोने ना लगें पर दोनों खिलखिला कर हँस पड़ीं। उन्हें शायद ये कौतुहल हुआ कि कोई उनकी जगह के बारे में जानता है और रास्ता भी बता रहा है।

"अगला स्टेशन कड़कड़डूमा कोर्ट है".. मैट्रो में उद्घोषणा हुई।

दरवाज़े खुलते ही अवंतिका दोनों को लेकर बाहर निकल आई और वापसी की मैट्रो ली। उसने सोचा बच्चों को सिलमपुर पहुँचाकर हॉस्टल चली जाएगी और घर लौटने की तैयारी करेगी। कोई और रास्ता तो बचा ही नहीं अब।

स्नेह भरे इस छोटे से परिचय में ही नए चमकीले कपड़ों में सजीं और मोती वाले रिबन से चोटी सजाए बच्चियों ने बता दिया कि वे ईदी के थोड़े से रुपयों से घूमने निकली हैं। बाक़ी बच्चे तो चाट-पकौड़ी खाने गए हैं और कुछ खिलौने लेने। पर ये दोनों बच्चियाँ दो-तीन स्टेशन का टिकट लेकर मैट्रो देखने आईं थीं। कुछ ग़लतफ़हमी हुई तो पिंक लाइन में चली गई थीं।

वापसी की मैट्रो में अवंतिका तो सीट मिलते ही बैठ गई लेकिन बच्चियाँ फिर से जाकर दरवाज़े से नाक सटाकर बाहर का नज़ारा देखने लगीं। अवंतिका ने उन्हें बैठने के लिए बुलाया। बच्चियाँ नहीं आईं। भीड़ के डर से अवंतिका ने फिर बुलाया ...एक बच्ची आई और प्यार से उसके कान के पास आकर कहने लगी
"जो बैठ गए तो दुनिया कैसे देखेंगे..."
"तुम लोगों को डर नहीं लगता... तुम्हारा घर खो गया तो"
"तो हम नया घर बना लेंगे...जहाँ अच्छा लगेगा वहाँ... हीहीहीही" फिर से दोनों बच्चियाँ हँसने लगीं।

बच्चों की बात...फिर से शीशा..चपटी नाक और बाहर का नज़ारा..

लेकिन जैसे एक बिजली कौंधी। अवंतिका को अपने बहुत सारे सवालों का जवाब एक साथ मिल गया। डीयू में पढ़ने वाली लड़की... परिवार की पांचवी और उपेक्षित बेटी.. पता नहीं किस अंजाने डर का शिकार हो चली थी। उसके पास खोने के लिए था ही क्या। पर हिम्मत करेगी तो बहुत कुछ पा ज़रूर लेगी।

छोटी-छोटी बच्चियों से आज जीवन का सबक मिल गया।....

जो बैठ गए तो दुनिया कैसे देखेंगे....तो हम नया घर बना लेंगे...जहाँ अच्छा लगेगा वहाँ... ■

सुअवसर

- शारंग

कुछ दबी सी चाह में न था घुटना,
बादलों का सूरज से यूं छिपना,
रोशनी का जमीन से लिपटना,
खोज रहा था नया मायना,
सवालों से धूमिल मन का आईना,
समझ गया देख आसमान, सूरज सा नहीं अब कोई बेफिक्र,
ये सीख निकल चला वो अपनी ढगर,
इक अकेला पर झूमता जैसे क़ौम हो या कारवां,
आंधी ने पराग बन बहाया,
नई शाखों से उसका परिचय कराया,
गुलाब सा खिल रहा हे यारों से दोसताना,
जमीन पकड़ रही है नन्ही जड़,
नई जगह नया नगर,
टूटेगी डाली, फिर आएगी पतझड़,
कभी वर्षा देगी जल अमृत,
कभी सूखा छीन लेगा जीने का अर्थ,
अलबेला है पर अब नहीं रहा वो नासमझ,
देर लगे पर अब सुनता है दिल की गजर ।

शक्ति पर्व

- चिन्मय दीक्षित
विशेषज्ञ(हिन्दी)
एनएचके वर्ल्ड-जापान)

भारत विविधताओं का देश है। देवभूमि, आर्यवर्त, भारतवर्ष इत्यादि नामों से जाना जाने वाला यह देश ज्ञान वैराग्य मोक्ष और अवतारों का दृष्टा रहा है। जीव की उत्पत्ति ब्रह्मांड का सृजन सभ्यताओं का पलना और नवीनतम सभ्यताओं की जननी रही इस भारत भूमि ने विराट सभ्यताओं और साम्राज्यों का जन्मना पनपना और अंत भी देखा है। इस भूमि में वेद हुए, इस भूमि में वेदव्यास हुए, इस इस भूमि में भगवान राम हुए, कृष्ण हुए, बुद्ध हुए। कोई आश्चर्य नहीं कि यह देवभूमि है। उद्भट विद्वानों, प्रकाँड पंडितों और विपुल संसाधनों से रत्नों से युक्त यह भूमि दुनिया के आकर्षण का केंद्र रही है।

तो ऐसा क्या खास था इस भूमि में जो यहाँ पर ही सभ्यताओं का, परंपराओं का, विद्याओं का, रीति का, ज्ञान का, विज्ञान का, शोध का, न केवल सृजन हुआ वरन् संवर्धन और फिर उत्तरोत्तर विकास भी हुआ। अगर इस प्रश्न का उत्तर चाहिए तो हमें वाकई में आरंभ की ओर चलना पड़ेगा। वस्तुतः वसुधैव कुटुम्बकम् की परंपरा के मूल में अवस्थित वसुधा को समझना आवश्यक है। संस्कृत के एक श्लोक की अर्धाली है- या देवी सर्वभूतेषु...

यह जो आरंभिक शब्दयुग्म हैं यह वास्तव में भारत की अंतरात्मा का अंतर्निहित सिद्धांत है। "या देवी सर्वभूतेषु" का अर्थ है देवी का सभी भूतों में न केवल विद्यमान होना वरन् उनकी अधिष्ठात्री होना, सर्वभूत अर्थात भू पर उपस्थित जो समस्त चल-अचल पदार्थ हैं उन सभी में देवी न केवल अवस्थित हैं बल्कि उनकी ईश भी हैं। उनके अस्तित्व का आधार हैं। यही सनातनी परंपरा की नींव है। सनातन का अर्थ ही होता है शाश्वत। जो सदा से चला आ रहा हो, जिसका कोई आदि नहीं है। इस परंपरा के अनुसार सृष्टि की उत्पत्ति प्रकृति और पुरुष के मिलन से हुई। यहाँ प्रकृति का तो अर्थ ही शक्ति है। परंतु यह शक्ति होती क्या है? इसका उद्भव कहाँ है? इसकी आवश्यकता क्या है? अगर वैज्ञानिक दृष्टि से देखें तो यह ऊर्जा है, वह शक्ति है जो जीवन का आधार है। वैज्ञानिक भाषा में सूक्ष्मतम स्तर पर शक्ति को कोशिका के केंद्रक में अनुवांशिक पदार्थ के निर्माण हेतु प्रोटीन बनाने के लिए प्रयुक्त होने वाली ऊष्मा कह सकते हैं, जो जीवद्रव्य (प्रोटोप्लाज्म) के मुख्य अवयव के निर्माण एवं शारीरिक वृद्धि तथा विभिन्न जैविक क्रियाओं के लिए आवश्यक है। विराट स्तर पर वह सूर्य को देदीप्यमान कर पृथ्वी पर जीवन संभव करने वाली ऊर्जा है। आध्यात्मिक दृष्टि में सनातन परंपरा में शक्ति को चेतना माना गया है। शिव की अर्धांगिनी कहा गया है। जड़ ब्रह्माण्ड को जो चेतन कर दे वह शक्ति है। लौकिक जगत में भारत की सभ्यताओं में प्राचीन ऋषियों के मतानुसार जीवन प्रदाता स्त्री को पराशक्ति की एक इकाई या उसका मूर्त रूप माना गया है। "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।" अर्थात जहाँ नारी पूज्य होती है वहाँ देवताओं का निवास होता है - इस सिद्धांत की उत्पत्ति का पीछे का यही तर्क होना चाहिए।

यहाँ पर यह समझ लेना उचित है कि देवता बाहरी या अन्य पुरुषों को नहीं कहा गया है। देवत्व गुण से युक्त मनुष्य ही देवता कहा गया है। पर सनातन धर्म चर्चा में कर्मकाण्ड की बात न हो यह तो असंभव है। वस्तुतः सनातन परंपरा में कर्मकाण्ड का उतना ही प्रयोजन है जितना कि किसी भी वैज्ञानिक अनुसंधान में प्राथमिक विद्यालय की विज्ञान कक्षाओं से प्राप्त ज्ञान का। अर्थात वह केवल पात्रता प्रदान करने का मूल मार्ग प्रशस्त करते हैं। उद्देश्य उनसे कहीं आगे और कहीं अधिक विराट होता है। कर्मकाण्ड का उद्देश्य केवल अनुशासन, यम, नियम, आसन, प्रत्याहार इत्यादि का अनुपालन कर शरीर रूपी साधन को परिपक्व करने से है। जैसे किसी थुलथुल काया वाले आलसी व्यक्ति को फर्राटा दौड़ प्रतियोगिता को जीतने के लिए पहले काया और आलस त्याग कर दौड़ की पात्रता लानी होती है। उसके लिए चुस्त-दुरुस्त तंदरुस्त शरीर और फुर्ती चाहिए होती है। वैसे ही ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के लिए स्वस्थ तन तथा उससे भी ज़्यादा अनुशासित अंतर्मन आवश्यक है। ऐसा मन जो काम, क्रोध, मद, लोभ के विकारों पर नियंत्रण पा चुका हो, इसलिए उद्देश्य की पूर्ति के लिए वेदों में कर्मकाण्ड का उल्लेख है।

परंतु कर्मकाण्ड के अतिरेक से जब भारतीय संस्कृति में सनातन धर्म का ह्रास होने लगा, केवल साधन को ही उद्देश्य बनाया जाने लगा, ईश्वर के अस्तित्व को नकारा जाने लगा उस समय भारत भूमि पर आदि शंकराचार्य का पदार्पण होता है। आदि शंकराचार्य ने वेदांत का सिद्धांत प्रतिपादित किया- "ब्रह्म सत्यम जगन्मिथ्या।" अर्थात ब्रह्म ही सत्य है शाश्वत है, यह जगत मिथ्या है, नश्वर है। ईश्वर की प्राप्ति में समत्व भाव का होना आवश्यक है। हालाँकि शंकराचार्य द्वारा अद्वैतवाद के मूल मत के लिए समन्वय के इस आधार पर मुख्यतः इन पद्धतियों को मान्यता दी गयी है:-

शैवाचार (2) शाक्ताचार (3) वैष्णवाचार (4) गणपत्याचार (5) सौराचार।

शैवाचार का लक्ष्य शिव-समाधि अर्थात् आत्म-साक्षात्कार या आत्मज्ञान है, इसमें बाहरी वृत्तियों को अंतर्मुखी करते हुए अंत में परमात्मा में मिलाने का अभ्यास किया जाता है।

"यच्छेद्वांग्मनसो प्रज्ञस्तद्यच्छेद्ज्ञानात्मनि, ज्ञानात्मनि महतीनियच्छेद् तद्यच्छेद्छान्तात्मनि।»

अर्थात - मन को बाहरी सभी आकर्षणों से भीतर खींचकर अहं तत्व में, फिर अहं तत्व को महत् तत्व में, और महत् तत्व को आत्म तत्व में मिला देना चाहिये। इसका अभ्यास विभिन्न स्तरों पर आत्मसाक्षात्कारी गुरू अपनी देखरेख में कराते हैं। विद्यातन्त्र, कुंडलनी योग, योग विज्ञान, स्वरविज्ञान और नाद विज्ञान इसी के अन्तर्गत आते हैं।

शाक्ताचार के अनुसार तामसिक शक्ति को भवानी या कालिका शक्ति में मिलना चाहिए जिसका बीजमंत्र "सम्" है, इसमें से राजसिक शक्ति को निकालकर भैरवीशक्ति में मिलाना चाहिये जिसका बीज मंत्र है "शम्"। इससे सात्विक शक्ति को खींचकर कौषिकीशक्ति में मिला देना चाहिये। पौराणिक शाक्ताचार के यह क्रमागत पद हैं जिन पर चलकर साधक लाभ पाता है। यहाँ कालिकाशक्ति का आशय दार्शनिक अर्थात् "समय तथा आकाश" से संबंधित है, शिव की पत्नी काली अथवा बौद्ध और शिवोत्तर तंत्र की कालिकाशक्ति से इसका कोई संबंध नहीं है। परन्तु पाश्चात्यवर्ती विद्वानों ने लोलुपतावश इसे पशुबलि आदि से जोड़कर प्रकृतिपूजा और अविद्यातन्त्र की ओर मोड़ दिया है।

वैष्णवाचार में विश्व की सभी वस्तुओं में विष्णु को व्याप्त मानकर उपासना की जाती है, "विस्तारः सर्वभूतस्यविष्णोरविष्वमिदमजगत्, द्रष्टव्यमआत्मवत् तस्माद्भेदेन विचक्षनैः।" अर्थात् यह विस्तृत दृश्य अदृश्य प्रपञ्च सभी कुछ विष्णु ही है अतः स्वयं सहित सभी में उनको अनुभव करने का अभ्यास करना चाहिये। पौराणिक काल्पनिक कथाओं के द्वारा इसी सिद्धान्त को लोक शिक्षा के लिए सरल ढंग से समझाने का प्रयास किया गया है परन्तु वह सब कर्मकाण्ड ने अपनी चपेट में ले लिया और लोगों को पथभ्रमित कर दिया।

गणपत्याचार में प्राचीनकाल के समूह नेतृत्व वाले गणपति को चुनकर समूह के स्थान पर विश्व के नेता का भाव दिया गया और परमपुरुष के रूप में इनकी ही उपासना हेतु कहा गया है। परंतु आजकल इन्हें काल्पनिक आकार प्रकार देकर आडम्बर फैलाया जाता है।

सौराचार मूलतः सूर्य की उपासना से संबंधित है जो दक्षिण रूस के सेक्डोनिया से आये ब्राह्मणों की उपासना पद्धति है। सेक्डोनियाई ब्राह्मण वेद या अन्य कोई पद्धति नहीं मानते थे वे केवल ज्योतिष और आयुर्वेद को ही मान्यता देते थे। उनके सूर्य ही इष्ट देवता थे क्योंकि वे मानते थे कि सूर्य से ही पृथ्वी, चंद्र और अन्य ग्रहों की उत्पत्ति हुई है

अतः विश्व के नियन्ता सूर्य ही हैं। यह मत सीमित क्षेत्रों में ही माना गया है।

इस प्रकार इन पौराणिक मान्यताओं को व्यापक प्रसार नहीं मिल पाया क्योंकि इसके कुछ भागों को दार्शनिक मान्यता थी और कुछ को नहीं। यह विवरण प्रकट करता है कि विद्यातन्त्र और उपनिषदों में वर्णित अद्वितीय, निरवयव, निष्कल, सच्चिदानन्दघन परमपुरुष को पाने के उपायों को तथ्यों सहित शैवाचार के अलावा कोई भी पद्धति पूर्णतः सम्मिलित या समावेशित नहीं कर पाती है, वरन् एक दूसरे से श्रेष्ठ सिद्ध करने के प्रयासों में आडम्बर और परस्पर वैमनस्य को ही बढ़ावा देती गयी है। परंतु समय के साथ संतों और ऋषियों ने मानवता के लिए सुलभ और ईश्वर की प्राप्ति के लिए सर्व सुलभ तीन मार्ग बताए गए हैं- ज्ञानयोग मार्ग, भक्तियोग मार्ग, और कर्मयोग मार्ग। पर इन सब का आधार है धर्म।

कालांतर में धर्म को पंथ के नाम से समझा जाने लगा जो सरासर ग़लत है। धर्म का अर्थ है वास्तविकता की अंतर्निहित प्रकृति। धर्म का अर्थ पंथ से कभी नहीं होता। बल्कि धर्म तो सृष्टि की उत्पत्ति का आधार है। भगवद्गीता में भगवान कृष्ण अर्जुन से कहते हैं की वास्तविक दृष्टा वही है जो समदृष्टिधारक है, जो यह देख सकता है यह समूची प्रकृति, समूचा विश्व गुणों के गुणों में ही बरतने से विद्यमान है। समस्त क्रियाओं की उत्पत्ति 3 गुण सत्व रजस और तमस के अंतर व्यवहार से होती है तथा इनके कारक भी गुण ही हैं। तो इस समीक्षा में शक्ति तो गुणातीत हो गई। और शक्ति के धारक शिव या पुत्री विष्णु भी गुणातीत हुए।

अतः वर्तमान में चल रही धर्मनिरपेक्षता की बहस ज्ञानियों और प्रबुद्ध जनों की दृष्टि में मूर्खतापूर्ण है क्योंकि किसी भी काल में कोई भी व्यक्ति धर्म विहीन तो हो ही नहीं सकता। तो धर्मनिरपेक्षता सैद्धांतिक रूप से एक मूर्खतापूर्ण कपोल कल्पना है। कर्तव्यों का निष्ठा पूर्वक निर्वहन मनुष्य की प्रकृति है। और प्रकृति अनुसार आचरण धर्म है। छात्रधर्म, पुत्रधर्म, पितृधर्म, पत्नीधर्म, राजधर्म, राष्ट्र-धर्म, इत्यादि विभिन्न स्थितियों में मनुष्य द्वारा कार्य निष्पादन के लिए आदर्श अपेक्षित व्यवहार हैं। और ऊपर दिया गया मतों के विवरण स्पष्ट करता है कि सनातन धर्मी पंथनिरपेक्ष तो हमेशा से रहे हैं। मत मतांतर तो विभिन्न पंथों में पाए जाया करते थे और इसी ने विभिन्न तत्वों की विभिन्न मार्गों की, सत्यान्वेषण के विभिन्न रास्तों की उत्पत्ति भी की। जब राजकुमार सिद्धार्थ को तत्कालीन पारंपरिक माध्यम से अपने प्रश्नों के उत्तर नहीं मिले तो उन्होंने साधना की, और आत्मयोग के माध्यम से ज्ञान का बोध कर बुद्ध धर्म का प्रतिपादन किया। सनातन धर्म में शैव, शाक्त, वैष्णव इत्यादि अनेक पंथ हुए। किंतु मतांतरों का होना अनादर सूचक नहीं था। इस संबंध में एक कथा बड़ी प्रचलित है की एक बार वैष्णव पंथी जगद्गुरु निंबार्काचार्य जी अपनी साधना के तहत तपस्या के लिए हिमालय पर गए थे। जब उनका तप पूरा हो गया तो वह चलने को तत्पर हुए। कहा जाता है कि उस समय वहाँ पर शक्ति स्वरूपिणी देवी प्रकट हुईं और उन्होंने निंबार्काचार्य से प्रसाद ग्रहण करने को कहा। निंबार्काचार्य जी ने उत्तर दिया की माँ मैं वैष्णव पंथी हूं और आपकी रसोई में माँस पकता है अतः मैं इस भोजन को ग्रहण करने में असमर्थ हूँ। देवी ने कहा कि मेरा पुत्र घर से भूखा कैसे जा सकता है। तो उस समय आदिशक्ति ने अपने भक्त की बात रखने के लिए निंबार्काचार्य से वैष्णव पंथ में यथावत दीक्षा ली। तब से देवी वैष्णवी कहलाईं।

एक और उदाहरण की बात करते हैं। ब्राह्मणों के लिए भिक्षाटन को आवश्यक माना गया था। मूलतः ज्ञानार्जन से अहंकार उत्पन्न हो सकता है। तो अहं को खत्म करने के लिए, साधक की शुद्धता की निरंतरता बनाए रखने के लिए, तथा ज्ञान का प्रचार प्रसार करने के लिए, ब्राह्मणों को भिक्षाटन निर्देशित था। परंतु चर्चा को आगे बढ़ाने से पहले यहाँ ब्राह्मण का अर्थ समझना आवश्यक है। वस्तुतः ब्राह्मण की परिभाषा है जो ब्रह्म का ज्ञानी हो। इसकी भी मानव जीवन में स्थितियाँ हैं।

शास्त्रों के अनुसार ब्राह्मण की परिभाषा है-

जन्मना जायतेन शूद्रः संस्कारात् द्विज उच्यते। वेद पठनात् भवेत्विप्रः ब्रह्म जानातीतिब्राह्मणः।।

अर्थात जन्म से मनुष्य शूद्र होता है, संस्कारों के उपरांत द्विज कहलाता है, वेद अध्ययन द्वारा ज्ञान प्राप्त होने पर विप्र बनता है तदोपरांत जब ब्रह्म ज्ञान होता ने तब ब्राह्मण कहलाता है। अतः उदाहरण की ओर लौटते हैं, एक बार ब्रह्मज्ञानी आदि शंकराचार्य भिक्षाटन हेतु एक कुटिया के द्वार पर पहुँचे। भिक्षा मांगने के लिए जब उन्होंने आवाज़ दी तो अंदर से ग्रह स्वामिनी ने उन्हें ठहरने को कहा। वह बाहर चौखट पर ही खड़े हो गए। जब विलंब कुछ अधिक हो गया तो आदि शंकराचार्य ने कहा कि माता अगर असमर्थता है तो कोई बात नहीं मैं प्रस्थान करता हूँ। इस पर अंदर से गृह स्वामिनी का जवाब आया कि घर की चौखट से भिक्षुक खाली हाथ जाए यह उचित नहीं है कृपया तनिक समय और दें। घर पर अन्न उपलब्ध नहीं है और मैं अपनी पुत्री के साथ इस कुटिया में रहती हूँ तथा हम दोनों के बीच में एक ही वस्त्र है जिसे पहनकर अभी मेरी पुत्री भिक्षाटन के लिए गई है, अतः आपका सत्कार करने के लिए बाहर आने हेतु मैं अभी असमर्थ हूँ। इतनी विकट परिस्थितियों में भी गृहस्वामिनी के धर्मानुग्रह से आदि शंकराचार्य इतने द्रवित हो गए कि उस समय उनके मुखारविंद से जो श्लोक निकले वो कनकधारा स्त्रोत के नाम विश्व में जाने गये और कहा जाता है कि जब आदि शंकराचार्य के श्री मुख से यह श्लोक निकले थे तो आकाश से स्वर्ण की वर्षा हुई थी।

उपरोक्त दोनों उदाहरण इस बात की पुष्टि करते हैं कि स्वधर्म पालन में स्थितप्रज्ञ व्यक्ति ईश्वरीय कृपा का अधिकारी हो जाता है, तथा निष्ठापूर्वक धर्माचरण से शुद्ध हुआ मनुष्य जीवन के लक्ष्य के उत्कर्ष को प्राप्त करता है।

आज के भारत में जब परंपराएं ध्वस्त हो रही हैं, धर्मानुसरण व्यवहार खत्म हो रहे हैं, ऐसे समय में सर्वाधिक आवश्यकता है आचरण में शुद्धता शुचिता लाने की, ज्ञान को बढ़ाने की। आत्मज्ञान को बढ़ाने की। परंतु आज के आधुनिक समय में समस्या सही मार्ग को जानने की है। सनातन धर्म को हिन्दू धर्म कहा जाने लगा है जो मूलतः यूनानी आक्रांताओं द्वारा सिंधु का उच्चारण न कर पाने के सिंधु का अपभ्रंश है। सप्तसैंधव क्षेत्र में रहने वाले सभी लोग हिन्दू कहलाए और कालांतर में भारत का नामकरण हिन्दूस्थान से हिन्दुस्तान हो गया।

भारत में एक बहस और चली आ रही है शूद्रों के संबंध में। इस पर मनुस्मृति की निंदा करने वाले समाज में से एक ने भी मनुस्मृति का अध्ययन नहीं किया है। हिन्दू धर्म जो आज सनातन धर्म का पर्यायवाची बन गया है उसमें सबसे बड़ा प्रश्न है कि क्या वेदों में शूद्र को निम्न या नीचे स्तर का माना गया है? अगर वास्तविक अध्ययन करें तो हमें ज्ञात होता है कि वेदों में शूद्र को अत्यंत परिश्रमी कहा गया है।

यजुर्वेद में उद्धरण आता है "तपसे शूद्रं [यजुर्वेद 30/5]" अर्थात श्रम यानि मेहनत से खाद्यान्न उत्पत्ति आदि कठिन कार्यों का अनुष्ठान करने वाला शूद्र है। तप शब्द का प्रयोग अनंत सामर्थ्य से जगत के सभी पदार्थों कि रचना करने वाले ईश्वर के लिए वेद मंत्र में हुआ है। इसके अतिरिक्त वेदों में वर्णात्मक दृष्टि से शूद्र और ब्राह्मण में कोई भेद नहीं है। यजुर्वेद में कहा गया है किन मनुष्यों में निन्दित व्यभिचारी, जुआरी, नपुंसक जिनमें शूद्र (श्रमजीवी कारीगर) और ब्राह्मण (अध्यापक एवं शिक्षक) नहीं हैं, उनको दूर बसाओ और जो राजा के सम्बन्धी हितकारी (सदाचारी) हैं उन्हें समीप बसाया जाये। [यजुर्वेद 30 /22]। इस मंत्र में व्यवहार सिद्धि से ब्राह्मण एवं शूद्र में कोई भेद नहीं है। ब्राह्मण विद्या से राज्य कि सेवा करता है एवं शूद्र श्रम से राज्य कि सेवा करता है। दोनों को समीप बसाने का अर्थ यही दर्शाता है कि शूद्र अछूत शब्द का पर्यायवाची नहीं है एवं न ही नीचे होने का बोधक है।

वहीं ऋग्वेद के अनुसार मनुष्यों में न कोई बड़ा है, न कोई छोटा है। सभी आपस में एक समान बराबर के भाई है। सभी मिलकर लौकिक एवं पारलौकिक सुख एवं ऐश्वर्य कि प्राप्ति करें। [ऋग्वेद 5/60/5]।

मनुस्मृति में लिखा है कि हिंसा न करना, सच बोलना, दूसरे का धन अन्याय से न हरना, पवित्र रहना, इन्द्रियों का निग्रह करना, चारों वर्णों का समान धर्म है। [मनुस्मृति 10 /63]।

यहाँ पर स्पष्ट रूप से चारों वर्णों के आचार धर्म को एक माना गया है। वर्ण भेद से धार्मिक होने का कोई भेद नहीं है। महाभारत का संदर्भ लें तो उसमें स्पष्ट रूप से कर्म प्रधानता से वर्ण विभक्ति बतायी

गयी है। उदाहरण-

ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न होने से, संस्कार से, वेद श्रवण से अथवा ब्राह्मण पिता कि संतान होने भर से कोई ब्राह्मण नहीं बन जाता अपितु सदाचार से ही मनुष्य ब्राह्मण बनता है। [महाभारत अनुशासन पर्व अध्याय 143]।

कोई भी मनुष्य कुल और जाति के कारण ब्राह्मण नहीं हो सकता। यदि चंडाल भी सदाचारी है तो ब्राह्मण है। [महाभारत अनुशासन पर्व अध्याय 226]।

जो ब्राह्मण दुष्ट कर्म करता है, वो दम्भी, पापी और अज्ञानी है उसे शूद्र समझना चाहिए। और जो शूद्र सत्य और धर्म में स्थित है उसे ब्राह्मण समझना चाहिए। [महाभारत वन पर्व अध्याय 216/14]।

अतः हिन्दू या सनातन धर्म में व्याख्या की गयी है वर्ण व्यवस्था की। मध्यकाल में भारतीय परंपरा और धर्म का सर्वाधिक ह्रास हुआ है। आक्रांताओं द्वारा ज्ञान के केंद्रों को ध्वस्त किया गया। विश्वविद्यालयों को आग लगा कर ऐसे समस्त ज्ञानियों की नृशंस हत्या की गयी जिनके द्वारा श्रुतियाँ और स्मृतियाँ कंठस्थ कर ज्ञान को अगली पीढ़ी को हस्तांतरित किया जाना संभावित था। मूलतः अब्राहमिक पंथों में पंथ विस्तारण की पद्धति बलात् ही है। गोया कि ईसा मसीह को जीते-जी तो सूली पर चढ़ा दिया और मरने के बाद उसे शांति और प्रेम का दूत बताते हुए विश्व भर में शांति भंग की।

अश्वमेध यज्ञ की प्रथा विशुद्ध वैदिक है और इसमें संप्रभुता पर प्रश्न करने वाले राजा से युद्ध किया जाता था। परंतु अश्वमेध यज्ञ की पात्रता तक पहुँचने से पहले के सारे पड़ावों को पार करने में राजा तथा राज्य का परिष्कृत होते जाना स्वाभाविक स्थितियाँ होती थीं। जैसे विद्वान व्यक्ति को अक्षरज्ञान नहीं सिखाया जाता उसी प्रकार से अश्वमेध यज्ञ के पात्र राजा को भी तुच्छ प्रयोजन से अभिप्राय नहीं रहा करता था।

किंतु भारतीय प्रायद्वीप पर हुए आक्रमणों में यूँ तो चौतरफ़ा नुकसान हुआ परंतु उसमें भी भारतीय सभ्यता को सर्वाधिक ह्रास हुआ था स्त्रियों को केवल संभोग की वस्तु बनाए जाने से। वस्तुकरण की प्रथा पाशविक भी नहीं कही जा सकती क्योंकि उसके प्रमाण पशुओं में भी नहीं मिलते हैं। परंतु इसकी क्षति यह हुई कि अब्राहमिक पंथों द्वारा थोपी गयी क्षुद्र तथा त्रुटिपूर्ण मानसिकता का सामान्य मानवीय प्रवृत्तियों को अनैतिक घोषित किए जाने ने मानसिक विकारों से ग्रस्त समाज का निर्माण संस्थागत कर दिया। विक्टोरियाई नैतिकता के हमले ने शृंगार रस को केवल साधक और परमात्मा के बीच एक आध्यात्मिक मिलन के रूप में परिभाषित कर उसके भौतिक और भावनात्मक पहलू के मिलन को खत्म कर दिया। और इसी का अनुसरण करते हुए आज भारतीय संस्कृति के स्वघोषित संरक्षक लोगों को परेशान करते हैं क्योंकि उन्होंने सनातन धर्म के रूप में विक्टोरियाई नैतिकता को अपनाया है। एक उदाहरण के रूप में, हमारी मैकालेवादी बुद्धि की छलाँग देखें। हम वैलेन्टाइन-डे पर कई रंगीन फूलों का आदान-प्रदान करके संस्कृति के नकली संरक्षकों को मुँहतोड़ जवाब देने का दावा करते हैं जबकि विडंबना यह है कि विदेशी अंधानुकरण के थोथे प्रदर्शन में, हम नहीं जानते कि विक्टोरिया के समय में फूलों का आदान-प्रदान शुरू हुआ क्योंकि प्रेम के बाहरी भाव निषिद्ध थे!

और इसी के तहत गोस्वामी तुलसीदास को नारी निंदक कहने के लिये श्रीरामचरितमानस की चौपाई- ढोल गंवार सूद्र पशु नारि। यह सब ताडन के अधिकारी।।

को उद्धृत किया जाता रहा है। कारण स्पष्ट है, किंतु मूर्खता ताडन के अर्थ को समझने में की गयी है। जहाँ तक ताड़न शब्द के विभिन्न अर्थों की बात है तो यह सुभाषित् देखिये

«लालयेत् पंचवर्षाणि दशवर्षाणि ताडयेत्।
प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत्॥»

(पुत्र का पांच वर्ष तक लालन करें। दस वर्ष तक ताड़न करें। सोलहवां वर्ष लग जाने पर उसके साथ मित्र के समान व्यवहार करना चाहिए।)

जयदेव ने रतिमंजरी में ताड़न शब्द का प्रयोग ऐसे किया।

लिङ्गप्रवेशनं कृत्वा धृत्वा गाढ़प्रयोगतः।
पार्श्वद्वयञ्च सम्पीड्य सस्पृहं ताडयेद्भगम्॥

किंतु इसे समझने से पहले यह जानना आवश्यक है कि भारतीय परंपरा में स्त्री को पुरुष से कहीं भी कमतर नहीं है न ही उसे ऐसा कहीं दर्शाया गया है। गोस्वमी तुलसीदास जी श्रीरामचरितमानस में ही कहते हैं भवानीशंकरो वंदे श्रद्धाविश्वास रूपिणौ। परंतु तुलसीदास तो आधुनिक काल के हो गये, प्राचीन या मध्ययुग के पहले भी भर्तृहरिकृत शृंगार-शतक हो, जयदेवकृत गीत गोविन्द हो, या कालिदासकृत मेघदूतम्। शृंगार रस को हेय या विकार की दृष्टि से कभी देखा ही नहीं गया। सनातन परंपरा में जीवन के चार आश्रमों में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में भी काम की उतने ही निर्द्वंद्व रूप से व्याख्या की गयी है जितनी किसी अन्य आश्रम की। गीत गोविन्द की रतिमंजरी उत्कृष्ट उदाहरण है।

मूलतः यह ज्ञान भौतिक और भावनात्मक स्तर पर संपूर्णता प्रदान करने और भोग के उचित परिमाणों को स्थापित करने में सहायक होता था। इससे भौतिक द्वेष की, ईर्ष्या की भावनाएँ कुंठित रूप से समाज में व्याप्त नहीं हुआ करती थीं। स्त्रीत्व का एक प्राकृतिक अंग है लाज। जिसका शर्मनाक होने से कोई संबंध नहीं है। जवाब कैसे प्राकृतिक मानवी भावना को रोकने का प्रयास करेंगे तो और तीव्रता से प्रस्फुटित होकर विद्रोह का रूप धारण करती है। अब्राह्मिक और पश्चिमी सभ्यताओं की यही समस्या है। जो भारतीय सनातन परंपरा में कभी थी ही नहीं। वास्तव में तो आक्रमणकारियों से बच गए विराट मंदिर और पुरातन स्थल इस बात का प्रमाण हैं कि सनातनी भारत में स्त्रीत्व को संपूर्णता से अंगीकार करने में समाज भौतिक या भावनात्मक स्तर पर स्त्री और पुरुष में कोई भेदभाव नहीं करता था। वरन् सनातनी परंपरा में तो स्त्रीत्व तथा नारी को परंपराओं में, संस्कारों में, और शक्ति का स्वरूप होने के कारण पुरुष से उच्चतर पद दिया गया है। फिर तुलसीदास हों या आदि शंकराचार्य। दोनों ने ही इस तथ्य का प्रतिपादन किया है। तुलसीदास ने रामायण की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना – राम वनगमन के प्रसंग में स्पष्ट लिखा है कि –

जो केवल पितु आयसु ताता। तो जनि जाहु जानु बड़ी माता।।

अर्थात- अगर केवल पिता की आज्ञा से वनवास मिला है तो हे राम, माँ के पद को पिता से बड़ा जानकर मेरी आज्ञा शिरोधार्य करते हुए वन मत जाओ।

आदि शंकराचार्य ने लिखा है कि-

चिताभस्मालेपो गरलमशनंदिक्पटधरो जटाधारीकण्ठे भुजगपतिहारीपशुपतिः।
कपालीभूतेशोभजति जगदीशैकपदवीं भवानि त्वत्पाणिग्रहणपरिपाटीफलमिदम्।।

अर्थात – जो चिता की भस्म रमाते हैं, विष खाते हैं, निर्वस्त्र रहते हैं, जटाजूट बाँधते हैं, गले में सर्पराज की माला धारण करते हैं, हाथ में खप्पर लिए हैं, पशुपति और भूतों के स्वामी है, ऐसे शिवजी ने भी जो एकमात्र जगदीश्वर की पदवी प्राप्त की है, वह हे भवानि ! तुम्हारे साथ पाणिग्रहण का ही फल है।

अतः यह तो स्थापित हुआ कि शक्ति के बिना जीवन की उत्पत्ति है नहीं। त्रिदेवों के कार्य विस्तारण में विष्णु का जगपालन का दायित्व है। यहाँ पर भी विष्णु के साथ उनकी माया के विस्तार से ही जगत् चलायमान होता है। दैहिक रुप में विष्णु हरि की भूमिका अनूठी है। जबकि आध्यात्मिक विष्णु अद्भुत और चमत्कारी हैं।

जैसा कि देव के बारे में कहा गया है कि वे आध्यात्मिक हैं। इसका तात्पर्य यह भी अंतर्निहित है कि यही देवता भौतिक भी हैं। विष्णु कौन हैं। कहाँ है। वे सँसार का प्राण हैं। अदिति स्त्रीत्व का प्रतिनिधित्व करती हैं। विष्णु व अन्य आदित्यों की माता भी हैं। ब्राह्मण ग्रंथ कहते हैं कि पृथ्वी भी अदिति है। पृथ्वी पर यज्ञ की अवधारण कोई कपोल कल्पना नहीं है। पृथ्वी के नीचे अग्नि ही तो है। यज्ञ में जो आहुतियाँ दी जाती हैं, वह अग्नि को पोषित कर उसे लगातार धधकाते रहना ही तो हैं। प्राकृत में अग्नि (योनि) में, जिसे इंद्र प्राण कहा गया है, जब सोम (वीर्य) की आहुति होती है तभी तो गर्भ की, सृजन की स्थापना होती है। गर्भ उल्वण से परिवेष्ठित हो कर सुरक्षित रुप में विकसित होने लगता है। वह अग्नि से उत्पन्न हुआ है। इधर शरीर के मूलाधार चक्र गुदा से नाभि तक के स्थान को ही तो अग्नि स्थान कहा गया है। इसे अग्नि लोक भी कहते हैं। पेट में अग्नि न हो तो, भोजन नहीं पच सकता। भोजन ही ऊर्जा प्रदान करता है। भोजन भी हविष्य है। अतः ब्रह्माण्ड की इकाई होने के नाते मनुष्य में भी वही सब तत्व हैं, जो कि ब्रह्माण्ड में स्थित हैं। समदृष्टा अहं ब्रह्मास्मि का साक्षात्कार कर पराशक्ति के विस्तार को ही चराचर जगत में व्याप्त माया के सदृश देखते हैं। मनुष्य में ही

सूर्य, जल, वायु, आकाश और पृथ्वी अवस्थित हैं। आमाशय में अग्नि है। अतः इसे पृथ्वी लोक भी कहते हैं। मनुष्य के शरीर में तीनों लोक स्थित हैं। सत्य तो यह है कि ब्रह्मांड में कुल नौ लोक हैं जिनमें से सात तो मंत्र बद्ध हैं - «भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, और सत्यम्। ये सभी लोक मनुष्य शरीर में भी उपस्थित हैं। शक्ति के विस्तार में विष्णु आधिदैविक स्वरूप में शरीर में स्थित हैं। उनका स्वरूप आध्यात्मिक है। विशुद्ध विज्ञान है। हमारे शरीर में जो 33 देवता हैं, वे सभी अग्नि के रूप में स्थित हैं। 33 अग्नि। जो 33 देवता हैं - उनमें साक्षात अग्नि तो 8 वसु ही हैं। फिर 11 रुद्र जो अग्नि की अगली अवस्था वायु के ही रूप हैं। 11 रुद्रों के इस स्थान को अंतरिक्षलोक, वायुलोक अथवा चँद्रलोक कहते हैं। सवाल उठता है तो फिर स्वर्ग कहाँ है और स्वर्गलोक क्या है? 14 देवताओं में से 2 अश्विनी कुमार हैं। जबकि 12 देवता आदित्य कहलाते हैं जो वायुलोक से ऊपर स्थित स्वर्ग, द्यौ, अथवा आदित्य लोक में रहते हैं। यह अश्विनी कुमार 8 वसु और 11 रुद्रों के बीच गठान का काम करते हैं। सूर्य को आदित्य कहते हैं अतः शरीर में ही अग्नि, वायु और आदित्य स्थित हैं। जहाँ हृदय लोक है विष्णु वहीं निवास करते हैं। तो नाभि से कंठ तक 33 देवताओं का निवास है। यह सभी देवता अग्नि के प्रतीक हैं। जब तक शरीर में अग्निरूपी ऊर्जा है तब तक मनुष्य जीवित है, चैतन्य है।

परंतु इतने विस्तृत मत मतांतरों में सर्वप्रमुख प्रश्न यह उठता है कि किस मत का अवलंबन करना श्रेयस्कर है। इस संदर्भ में महाभारत में धर्मराज युधिष्ठिर से यक्ष प्रश्नों में से एक का उद्धरण इस समसामयिक समस्या का निराकरण करता है। यक्ष ने युधिष्ठिर से चिरंतन प्रश्न किया था, "कः पन्थाः"? अर्थात- पथ क्या है? या कि कौन सा पथ अवलंबनीय है। प्रश्न का मर्म समझकर युधिष्ठिर का निःशंक उत्तर था-

तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्ना नैको ऋषिर्यस्य मतं प्रमाणम्।
धर्मस्य तत्त्वंनिहितंगुहायाम् महाजनो येन गतः सः पन्थाः।।
(महाभारत वनपर्व 267/84)

अर्थात- तर्क से किसी प्रकार के निश्चय पर पहुंचना कठिन है क्योंकि जीवन जीने के मार्ग के निर्धारण के लिए भिन्न-भिन्न मतांतरों के भिन्न-भिन्न तर्क हैं अर्थात कोई सुस्थापित तर्क नहीं है। श्रुतियाँ यानि कि वेद और शास्त्र भी नानाविध परस्परविरोधी उपदेश करती हैं अर्थात उनमें भी भिन्नता आती है। कहीं भी ऐसे दो ऋषि या मुनि नहीं मिलेंगे जिनमें मतभेद न हो। अतैव उनके वचन भी प्रमाण नहीं कहे जा सकते। वास्तव में धर्म का मर्म तो अत्यंत गूढ़ है अतः व्यक्ति को चाहिए कि जिस मार्ग का अवलंबन महापुरुषों ने किया हो उसी का अनुसरण करना चाहिए।

आज के समय में जब मनुष्य में लालसाएँ विकराल रूप धारण कर रही हैं, पाशविक प्रवृत्तियाँ अप्रतिम स्तर पर पहुँच रही हैं, ऐसे समय में शक्ति धारण करने हेतु सुपात्र बनने का उचित मार्ग महापुरुषों द्वारा अपनाए गए पथ का अवलंबन ही है। पुनः एक बार आदिशक्ति को प्रणाम।

या देवी सर्वभूतेषु शक्ति रूपेण संस्थिताः नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः। ■

दीपावली संदेश

- सुनील शर्मा

गगन की ओर प्रक्षेपित वह चंचल अग्निपुंज।
दीपावली की श्यामवर्णी नभ को आलोकित करता है।।
कान्तिहीन एक एतिहासिक रेखाचित्र में।
ज्यूं कान्तिमय स्वपनिल रंग भरता है।।
शशिहीन रात्रि के वैधव्य को भरने के लिए।
उस की सूनी मांग में रक्तिम रंग भरता है।।
उस नभ में प्रकाशोत्पन्न करने के लिए।
उस में फैल जाने का उपक्रम करता है।।
फैलता है व अपने अस्तित्व को मिटा देता है।
प्रकाशपुंज मिटकर कालिमा को जन्म देता है।।
उस पुंज ने अपना विस्तार किया निर्विचार।
असीम कालिमा में क्या संभव था यह विस्तार।।
ज्यूं सिन्धु में डाली गई पीतवर्णी एक बूंद।
विस्तृत हो कर उसका रंग नहीं बदल सकती।।
खो जाती है उसी का विस्तार में विस्तृत हो।
अहं से परम की विजय का ढंग नहीं बदल सकती।।
वैसे ही प्रकाशपुंज बार बार विच्छिन्न हो कर।
अभिन्न एक से बार बार विभिन्न होकर-
दिपावली का एक अनिर्वचनीय संदेश बतलाता है।।
कि निज विस्तार अहं को भूल कर करना ही।
स्वयं की परम में मिलन की सार्थकता दिखलाता है।।

माँ, मित्र, मातृभूमी

- रिमझिम मोहन्ती

माँ

कभी शक्ती का श्रोत है तू
कभी स्नेह की धारा!

वज़ूद तेरा सूरज से भी तेजस्वी
ह्रदय ममता नीर धारा!

इच्छायें सदा अप्रकटित तेरी
भावनाओं के सैलाब से भरा !

अपने वजूद को भुलाकर
जो निभायी तुने रिवायतें..

इनसान बन खड़ा हूँ आज
जो भुलायी तूने अपनी ख्वाईशें!

मित्र

अस्थिर जीवन पथ पर दृढ आलम्बन बने
धुंधलते तेरे रात में प्रकाश का प्रथम करे
वह मित्र है !!
तेरी हर सफलता पर जो नाचे उन्माद
तेरी हर विफलता को ढके दामन तले
वह मित्र है !!
जो भटके तू अनीति दुराचार के माया जाल मैं
बन विवेक तलवार जो काटें उन फ़ासों को
वह मित्र है!!
जो निसहाय द्रौपदी तू कपटी कुटिल रंगमंच में
सखा कृष्ण सम अभेद कवच बने तेरी
वह मित्र है !!
जगत के नाथ, जगत के अधिपति
निसंकोच बने अर्जुन के सारथी
वह मित्र है !!

मातृभूमी

सदा समर्पित जिसकी स्नेहधारा,
निस्चल पान कर प्रेम सुधा मातः तेरा,
देशप्रेम में उन्मद चले सिपाही बांधे सेहरा।
दुल्हन बन सजे बैठी बलिदान की भूमि,
दे प्राणों की आहुति,
करे सुरक्षित घर आंगन तेरा।
कोटि नमन है तेरे वीर मतवालों को,
करूँ चरण वन्दना उन
निडर निर्भय निस्वार्थ परिवारों को।
विजयी विश्व तिरंगा प्यारा
झंडा ऊँचा रहे हमारा!!